अच्छा, बुरा, फर्जी और कचरा विज्ञान

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

साइंटिफिक अमेरिकन पत्रिका के डॉ. मार्टिन गार्डनर ने अपनी किताब *"साइंस - गुड, बैड एंड बोगस"* (विज्ञान - अच्छा, बुरा और फर्जी) में कुछ फर्जी प्रयोगों और सिद्धांतों को उजागर किया है, जिन्हें तथाकथित वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित किया गया है। कोई वैज्ञानिक सिद्धांत या दावा सही है या नहीं, इसका फैसला उसे दोहराकर और सत्यापन की प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। यदि मैं उसी प्रक्रिया का अनुसरण करता हूं और उसी सामग्री का उपयोग करता हूं लेकिन दावे के अनुसार परिणाम नहीं मिलता है तो बहुत संभव है कि आपका दावा गलत हो। यह वही है जिसे कार्ल पॉपर ने सत्यापन-योग्यता और खंडन-योग्यता की कसौटी कहा है।

कभी-कभी कोई अच्छा-सम्मानीय सिद्धांत या दावा अपर्याप्त या यहां तक कि स्पष्ट रूप से गलत साबित होता है। लेकिन जब कोई यह दावा करता है कि काफी लंबे समय से स्वीकृत मान्यताएं गलत हैं, तब वैज्ञानिक समुदाय इसे नकारने या स्वीकारने से पहले इस दावे को सत्य की जांच के लेंस से देखता है। किमियागर लंबे समय तक अन्य पदार्थों से सोना बनाने की कोशिश में असफल रहे थे। आधुनिक विज्ञान का शुक्र है कि अब हम यह जानते हैं वे क्यों असफल रहे थे। किमियागरी बुरा विज्ञान था।

फर्जी विज्ञान? 1990 के दशक में जनाब रामार पिल्लै ने दावा किया था कि वे जड़ी-बूटियों के मिश्रण का इस्तेमाल करके पानी को पेट्रोल में बदल सकते हैं। उनका दावा पेट्रोल से जल्दी हवा हो गया और वे धोखेबाज़ साबित हुए। उनका दावा फर्जी था, इस दावे के पीछे छुपा विचार सिर्फ पैसा बनाना और शोहरत पाना था।

अब हमारे पास एक नया अवतार है जिसे कचरा विज्ञान ही कहना बेहतर होगा। यह विज्ञान पत्रिकाओं के क्षेत्र में उत्पन्न हुआ, जहां वैज्ञानिक अपने शोध कार्यों को छपवाते हैं। कैसे? विज्ञान की लंबे समय से चली आ रही परंपरा रही है कि जब कोई अपना वैज्ञानिक शोध कार्य छपवाना चाहता है तो वह अपना शोध पत्र किसी पत्रिका को भेजता है। पत्रिका के संपादक इसे कुछ (अज्ञात, जिन्हें लिखने वाला नहीं जानता) समकक्ष वैज्ञानिकों (रेफरी) को समीक्षा के लिए भेज देते हैं। फिर लेखक उनकी आलोचनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया देकर उसे दुबारा प्रकाशन के लिए भेजता है। इसके बाद पांडुलिपि को स्वीकार कर प्रकाशित किया जाता है या फिर से संशोधित करने को कहा जाता है या अस्वीकार किया जाता है।

माना जाता है कि रेफरी के द्वारा यह प्रक्रिया ईमानदारी, पेशेवर ढंग से, बिना पक्षपात या बिना व्यक्तिगत एजेंडा के की जाती है। यह प्रक्रिया जितनी सख्त होगी, शोध पत्र की गुणवत्ता और शोधकर्ता की प्रसिद्धि उतनी अधिक तो होगी ही, साथ ही उस पत्रिका की साख भी बढ़ती है।

कुछ पत्रिकाओं को 'उच्च प्रभावी' माना जाता है जबकि कुछ दूसरी पत्रिकाएं चलताऊ होती हैं। और इस क्षेत्र के वैज्ञानिक की साख इस आधार पर मापी जाती है कि उसका शोध पत्र कहां प्रकाशित हुआ है और उसका प्रभाव-सूचकांक क्या है।

अभी तक यह खुशी की बात थी कि बौद्धिक विचारों के मुक्त आदान-प्रदान की कई सदियों चली आ रही इस परंपरा में यह सब मुफ्त में होता था। लेकिन अब दुख की बात है कि इस वैज्ञानिक सेवा की साख पर लाभ के मकसद का कब्ज़ा हो गया है। आजकल इनमें से कई 'उच्च प्रभाव' वाली पत्रिकाओं पर चंद विज्ञान पत्रिका प्रकाशक समूहों का स्वामित्व है, जहां अब पर्चा प्रकाशित करवाने के लिए भारी भरकम रकम (लगभग 2000 डॉलर से ज़्यादा) की मांग की जाती है। (और पाठकों को भी शोध पत्र पढ़ने के लिए पैसे देना पड़ते हैं)। एकाधिकारवादी समूह बनाने की इस प्रक्रिया से निराश होकर वैज्ञानिकों ने "ओपन एक्सेस" की ओर कदम बढ़ाया है। पब्लिक लाइब्रेरी ऑफ साइंस (PLoS)

समूह ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है, जिसमें लेखक को कुछ पैसा (संचालन के लिए, और यदि कोई नहीं दे सकता तो माफ कर दिया जाता है) देना होता है, और इस पत्रिका के सभी लेख मुफ्त में डाउनलोड करके पढ़े जा सकते हैं। इस पत्रिका में लेखों को प्रस्तुत करने, स्वीकारने और रेफरिंग की प्रक्रिया 'उच्च प्रभाव' वाली पत्रिकाओं से ज़्यादा कठिन और सख्त है। इस प्रकार PLoS पत्रिका उस मूल्य प्रणाली को वापस लाई है जो वैज्ञानिक समुदाय की विशेषता रही है।

हाल ही में एक निंदनीय घटनाक्रम उभरा है। यह "ओपन एक्सेस" पत्रिका का दूसरा रूप है, जिसे कुछ खिलाड़ियों द्वारा पैसा बनाने के मकसद से शुरू किया गया है। इन पत्रिकाओं के नाम बहुत आकर्षक होते हैं। ये आज की सभी तकनीकों का इस्तेमाल करते हैं लेकिन सख्त मूल्यांकन की प्रणाली को नहीं अपनाते (जिसमें समय लगता है)। इनमें आपके शोध पत्र का मूल्यांकन 48 घंटे में हो जाता है, और आपके शोध पत्र के प्रकाशन की गारंटी होती है, लेकिन इसके लिए आपको 1000-2000 डॉलर ढीले करना पड़ेंगे। ये शोध पत्रिकाएं जिस चीज़ को फैला रही हैं उसे कचरा विज्ञान कह सकते हैं। जो प्रकाशित हो रहा है वह ज़रूरी नहीं कि फर्जी हो लेकिन अक्सर अधकचरा और इस मायने में गहन विज्ञान नहीं होता। इसका उपयोग लेखक अपना बायोडैटा वज़नदार बनाने के लिए करते हैं।

इसी तरह की एक कचरा विज्ञान पत्रिका, *एग्रीकल्चर साइंस*, में एक शोध पत्र प्रकाशित हुआ है। शीर्षक है "*क्या जेनेटिक रूप से परिवर्तित जीव फॉर्मेल्डीहाइड का संचय करके आणविक व्यवस्था के संतुलन को बिगाड़ते हैं? जवाब तंत्रगत जीव विज्ञान में मिल सकता है।*" एक विज्ञान लेखक कविन सेनापति ने इस शोध पत्र की तीखी आलोचना करते हुए लिखा है: "इस शोध पत्र में कई ऐसी भविष्यवाणियां की गई है जैसे कोई मौसम विज्ञानी अपने मॉडल के आधार पर यह अनुमान लगाए कि आज पूरा दिन धूप रहेगी, बजाय इसके कि खिड़की से बाहर देख ले कि क्या अभी बारिश हो रही है।" (देखें http://www.project-syndicate.org/commentary/gmos-junk-science-by-henry-i-miller-and-kavin-senapthy-2015-09)।

एक जीव विज्ञानी ने जब यह शोध पत्र पढ़ा तो उन्होंने उस लेखक को अपनी प्रयोगशाला में अपने साथ काम करने के लिए आमंत्रित किया ताकि सामान्य सोयाबीन और जेनेटिक रूप से परिवर्तित सोयाबीन में फार्मेल्डिहाइड के स्तर की तुलना की जा सके। लेखक ने साफ इन्कार कर दिया। इन्कार का क्या कारण हो सकता है? क्या वे जेनेटिक रूप से परिवर्तित जीवों के खिलाफ हैं? ***(स्रोत फीचर्स)***

अगले अंक में....

स्रोत दिसम्बर 2015
अंक 323

- **क्या जतिंगा घाटी में पक्षी करते हैं आत्महत्या**
- **ततैया अंडों की गिनती करती है**
- **चांद पर चीन की पराबैंगनी दूरबीन**
- **पलकों के बगैर आंखों की सुरक्षा**